स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री
Self-Instructional Learning Material

मास्टर ऑफ आर्ट्स (समाजशास्त्र)

एम. ए. (समाजशास्त्र)

प्रथम वर्ष

भारत में ग्रामीण समाज

(Rural Society in India)

(तृतीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

भारत में ग्रामीण समाज
(Rural Society in India)

संस्करण–2016

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :
डॉ. राजेश त्रिपाठी
एसोसियेट प्रोफेसर, ग्रामीण प्रबन्धन विभाग

सम्पर्क सूत्र :
निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)
दूरभाष– 07670–265460, इ–मेल– distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
कुलसचिव
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरुचिपूर्ण और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान–विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।

ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक–पारिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधायें आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर–आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

भारत में ग्रामीण समाज
(Rural Society in India)

इकाई प्रथम **अध्याय – 1**

भारत में ग्रामीण समाज

खेतिहर तथा कृषक समाज की संरचना एवं विशेषताएँ

ग्रामीण परिवार

ग्रामीण भारत में जाति

जाति पंचायत एवं प्रभुजाति

इकाई द्वितीय **अध्याय – 2**

ग्रामीण भारत में धर्म

ग्रामीण भारत में आवास तथा अवस्थापना

भारत में कृषि अर्थव्यवस्था तथा उत्पादन प्रणाली

कृषक अन्त: सम्बन्ध

भू-स्वामित्व एवं श्रम

इकाई तृतीय **अध्याय – 3**

भूमि सम्बन्धी विधान तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना

ग्रामीण निर्धनता

ग्रामीणों की प्रवासिता

खेतिहर एवं भूमिहीन मजदूर

इकाई चतुर्थ **अध्याय – 4**

ग्रामीण समाज के लिये नियोजित परिवर्तन

पंचायती राज व्यवस्था एवं स्थानीय स्वशाषी सरकार

ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय

सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियाँ

इकाई-पंचम **अध्याय – 5**

भारत में प्रमुख कृषक आन्दोलन- एक आलोचनात्मक विश्लेषण

वैश्वीकरण और इसका भारतीय कृषि पर प्रभाव

जल तथा कृषि सिंचाई प्रबन्ध

भारत में ग्रामीण समाज :

NOTES

भारतीय समाज को मुख्यतः दो भागों मे बाँटा गया है– ग्रामीण समाज तथा नगरीय समाज। प्रत्येक मनुष्य इन दोनों में से किसी एक प्रकार के समुदाय में निवास करता है। ग्राम और नगर मानव जीवन के दो पहलू हैं। गांवों का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट का सम्पर्क पाया जाता है। जबकि नगरों में कृत्रिमता की प्रधानता होती है। जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अन्तःक्रिया का रूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष और गहन है, वह ग्राम है और जहाँ इन दोनों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष और क्षीण है, वह नगरीय स्थिति है। इन दोनों के पर्यावरणों में पर्याप्त अन्तर है। यह पर्यावरण सम्बन्धी अन्तर ही दो भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन को जन्म देता है। ग्रामीण समाज के पुनः दो खण्डों में विभाजित किया गया है। जन–जातीय समाज और कृषक समाज।

सम्पूर्ण भारतीय समाज को एक रेखाचित्र से इस प्रकार समझा जा सकता है–

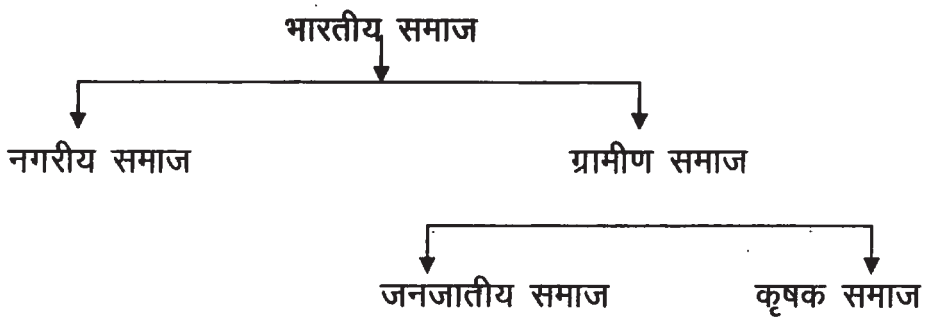

ग्रामीण समाज गाँव (यानि कृषि प्रधान खण्डों) से मिलकर बनता है। ग्रामीण समाज को भली भाँति समझने के लिये पहले समाज के बारे में जानना आवश्यक होता है।

खेतिहर तथा कृषक समाज की संरचना एवं विशेषताएँ :

खेतिहर तथा कृषक समाज की संरचना अन्य समाज से भिन्न है। कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए आन्द्रे बिताई ने कहा है कि सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिये कृषक समाज शब्दावली का प्रयोग उचित नहीं है फिर भी ग्रामीण समाज के दो विभागों में कृषक समाज का ही उल्लेख अधिकांशतः मिलता है। कृषक समाज की संरचना प्रस्तुत करते हुए आन्द्र बिताई ने इसे कृषक असंतोष के लिये एक उत्तरदायी

कारण माना है। उन्होंने खेतिहर तथा कृषक समाज की सामाजिक संरचना की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है–

NOTES

1. कृषि जीवन जीने का तरीका है। कृषक वह है जो कृषि को जीवन जीने के तरीके के रूप में अपनाता है। पीढ़ियों से उसके परिवार में कृषि में ही जीवन निर्वाह होता रहा है। यहाँ लाभ हानि नहीं देखता। यदि कोई व्यक्ति कृषि में लगे श्रम, खाद, बीज और इसमें होने वाली फसल के आर्थिक लाभ–हानि के रूप में देखता है तो उसे हम किसान कहते हैं। खेतिहर या कृषक नहीं।
2. कृषक भूमि से जुड़ा होता है– कृषक न केवल कृषि भूमि पर रहता है, वरन् उसे अपने परिश्रम से लाभदायक भी बनाता है। कानूनी दृष्टि से यह भूमि का स्वामी होता है। किराये पर कृषि करने वाला कृषि श्रमिक कहलाता है, कृषक नहीं। कृषक मानसिक रूप से अपनी भूमि से जुड़ा होता है। कृषि भूमि की मात्रा गांव में उसके पद और प्रतिष्ठा का निर्धारण करती है। यदि कृषक की भूमि बिकती है तो वह ऐसा समझता है मानों उसके जीवन और परिवार का कुछ खो गया हो।
3. कृषक अपनी कृषि भूमि का स्वयं नियंत्रणकर्ता होता है। कृषि पर उसका अपना अधिकार होता है और वही उस भूमि का भू स्वामी होता है।
4. कृषक स्वयं के लिये उत्पादन करता है। वह अपनी फसल को बाजार में बेचने के लिये पैदा नहीं करता है।
5. कुलीन वर्ग के लोग कृषक के मार्ग दर्शक होते हैं। कृषक को जब भी कोई परेशानी होती है तो मार्ग दर्शन के लिये वह कुलीन वर्ग की ओर निहारता है। क्योंकि कुलीन वर्ग शिक्षित तथा सम्पत्ति सम्पन्न होता है। उसके सम्बन्ध विभिन्न अधिकारियों से होते हैं।
6. कृषक समाज अपेक्षातया एक समरूप समाज होता है। सभी कृषकों के खान–पान, रहन–सहन, विश्व दृष्टिकोण, जीवन जीने के ढंग एवं विचारों तथा सामाजिक संरचना में समरूपता पाई जाती है।

7. कृषक समाज एक अविभेदीकृत एवं अस्तरीकृत समुदाय होता है। उसमें आधुनिक समाजों की तरह उच्चता और निम्नता के अत्यधिक भेद नहीं पाये जाते।

NOTES

8. कृषक समाज नगरों या कस्बों के कुलीन वर्ग से भिन्न है– यद्यपि यह उनसे अनेक क्षेत्रों में प्रभावित होता है।
9. आर्थिक आधार पर कृषक समाज अन्य समाजों से भिन्न होता है।
10. कृषक समाज में सामाजिकता और आर्थिक असमानतायें विद्यमान हैं।
11. कृषक समाज की संरचना परम्परागत है।
12. कृषक समाज का सांस्कृतिक प्रतिमान अंधविश्वासी परम्पराओं की एक शक्तिशाली श्रंखला है।
13. कृषक समाज में रहन–सहन का स्तर निम्नकोटि का है।
14. कृषक समाज में आज भी अधिकांशतः संयुक्त परिवार मिलते हैं।
15. कृषक समाज में शिक्षा की स्थिति आज भी दयनीय है।
16. कृषक समाज भी कई खण्डों में विभक्त हैं, जैसे लघु कृषक, सीमान्त कृषक और कृषक मजदूर आदि।
17. कृषक समाज में मौसमी बेरोजगारी ज्यादा है।
18. कृषक समाज सीमित दायरों से बंधा हुआ समाज है और सामाजिक सम्बन्धों का ताना–बाना भी सीमित है।
19. कृषक समाज वैयन्तिक सम्बन्धों पर आश्रित नहीं हैं। इस प्रकार, कृषक समाज की संरचना सरल है। लेकिन आधुनिकता की हवा से यह समाज वंचित नहीं है, जिसके फलस्वरूप उनकी संरचना में परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

कृषक समाज की संरचना– सामाजिक संरचना का अर्थ एवं परिभाषाएँ :

समाजशास्त्र में 'सामाजिक संरचना' शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक प्रतिक्रियाओं के निश्चित क्रम के लिये किया जाता है। 'सामाजिक संरचना' शब्द का प्रयोग अन्य मिलते–जुलते शब्दों जैसे–

'सामाजिक संगठन' 'सामाजिक व्यवस्था' प्रतिमान अथवा 'सम्पूर्ण समाज के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया जाता है। इसलिये इसका कोई एक निश्चित अर्थ देना एक कठिन कार्य हो जाता है। फिर भी अधिकांश समाजशास्त्री 'सामाजिक संरचना' शब्द का प्रयोग व्यवस्थित अथवा प्रतिमानित ढंगों के लिये करते हैं। जिनसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह परस्पर एक–दूसरे से अपने आपको सम्बन्धित करते हैं।

NOTES

सामाजिक संरचना को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। एक0 जिन्सवर्ग– "सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् समूहों, समितियों एवं संस्थाओं के प्रकार और इन सबके संकुल जिनसे कि समाज बनता है, से सम्बन्धित है। सामाजिक संरचना के एक पूर्णांग विवरण व अन्तर्गत तुलनात्मक संस्थाओं के सम्पूर्ण क्षेत्र के विश्लेषण का समावेश होगा।

मैकाइवर तथा पेज "जिसमें विभिन्न व्यक्ति समूह एक दूसरे के साथ संगठित रहता है वही सामाजिक संरचना है।"

कृषक समाज की आर्थिक संरचना :

कृषक विश्व के अधिकांश लोगों की जीविका का प्रधान साधन रही है। आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व जब मानव ने पौधों को उगाना सीखा तब से खेती करने के तरीके में आश्चर्यजनक गति से वृद्धि हुई है। मिट्टी तथा जलवायु के प्रभाव में यद्यपि कमी हुई है। फिर भी भूमि की उत्पादकता में आश्चर्यजनक गति से वृद्धि हुई है। पहले हाथ से फिर जानवरों की सहायता से और आज आधुनिक तकनीक से विकसित उन्नत औजारों से कृषि का कार्य किया जा रहा है। कृषि की पद्धति में सुधार का यह क्रम आज भी जारी है। यद्यपि सन 1950 के बाद के पाँच दशकों में विश्व के अधिकांश अल्प विकसित तथा विकासशील देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया बहुत ही तीव्र हो गयी है। फिर भी आज कृषि इन देशों के अधिकांश निवासियों की जीविका का मुख्य साधन है। आज भी इन देशों के प्रायः दो तिहाई से भी अधिक निवासियों की जीविका का मुख्य व्यवसाय कृषि है।

यद्यपि कृषि आज भी भारत जैसे अधिकांश अल्पविकसित तथा विकासशील देशों का प्रमुख व्यवसाय है तथापि विकसित राष्ट्रों की तुलना में यह व्यवसाय इन देशों में

अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में है। उदाहरण के तौर पर, संयुक्त राज्य अमेरिका की 8 प्रतिशत कृषक जनसंख्या केवल वहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या के लिये खाद्यान्न की उत्पादित नहीं कर लेती, अपितु निर्यात के लिये भी पर्याप्त मात्रा में उत्पादन कर लेती है। जबकि अल्प विकसित देशों की 60 प्रतिशत से 80 प्रतिशत कृषक जनसंख्या भी कार्य को पूरी नहीं कर पाती। इन देशों में जनाधिक्य के कारण प्रति हेक्टेयर तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम होता है। यही कारण है कि ये देश आज भी निर्धनता के जाल में उलझे हुए हैं। परिणाम–स्वरूप आज भी इन देशों में लाखों लोगों को अभी भी दो समय का भोजन नसीब नहीं हो पाता है।

NOTES

अन्य देशों की तुलना में भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि के अनुपात की स्थिति के अध्ययन से पता चलता है कि भारत की राष्ट्रीय आप में कृषि का भाग 1997–18 में 26 प्रतिशत था, जबकि इग्लैण्ड में यह 2 प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 3 प्रतिशत, कनाडा में 4 प्रतिशत और आस्ट्रेलिया में 5 प्रतिशत था। जितना ही कोई देश समुन्नत है, कृषि का हिस्सा उतना ही कम है। भारत जो उन्नत अर्थव्यवस्था की स्थिति तक नहीं पहुँचा है, अभी भी कृषि प्रधान है। भारत के सकल घरेलू उत्पादन में वर्ष 2004–05 में कृषि का योगदान 29 प्रतिशत रहा।

कृषि में निम्न उत्पादकता के कारण इन देशों में ग्रामीण जनसंख्या की आय अत्यन्त कम है। जिससे लोगों का रहन–सहन का स्तर भी अत्यन्त निम्न होता है फिर बचत करने की कम क्षमता कृषि में निवेश की दर को सीमित बनाये हुए हैं। कृषि कार्य प्राचीन एवं पिछड़े तरीकों द्वारा किया जाता है। जो निम्न उत्पादकता और निर्धनता दोनों के लिये उत्तरदायी होता है। सारांश यह है कि अल्प विकसित देशों मे निम्न कृषि उत्पादकता एक ओर ग्रामीण जनसंख्या को दरिद्र बनाती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास को सीमित बनाती है। अतः ऐसे देशों में विकास नीति का प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य अतिरेक को बढ़ाने का होना चाहिये।

चूँकि इन देशों का प्रतिकूल सामाजिक तथा संस्थानिक ढाँचा कृषि उत्पादकता को बढाने में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिये इसका पहला प्रयास वर्तमान ग्रामीण ढाँचे में

NOTES

अमूल परिवर्तन लाकर उसे विकासोन्मुख बनाने का होना चाहिये। इसके लिये राष्ट्रीय सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को विकासोन्मुख करने के लिये अनेक प्राथमिकताओं और योजनाओं को लागू किया। ताकि कृषि क्षेत्र में विकास को साथ ही लघु एवं सीमान्त कृषकों और कृषि मजदूरों के लिये भी सीमान्त कृषकों और कृषि मजदूरों के लिये भी लाभकारी योजनाओं के लिये कार्यक्रम चलाया। जिसे ग्रामीण विकास सम्बन्धी विशेष कार्यक्रम कहा जाता है। इससे भी कृषक समाज लाभान्वित हुआ है और कृषि विकास भी हुआ है। इसके फलस्वरूप कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन भी हुआ है।

ग्रामीण परिवार :

ग्रामीण परिवार एक ऐसा गृहस्थ समूह है जिसमें माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची, भाई–भाभी, चचेरे भाई–बहन तथा अविवाहित भाई–बहन सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार, ग्रामीण परिवार के सदस्यों का एक सामान्य निवास–स्थान होता है, वे एक रसोई का पका भोजन करते हैं तथा सामान्य सम्पत्ति रखते हैं। के0एम0 कपाड़िया ने पीढ़ियों की गहराई को ग्रामीण परिवार (संयुक्त परिवार) का लक्षण माना है। ग्रामीण परिवार की पूरी सत्ता मुखिया में केन्द्रित होती है। जिसे परिवार का कर्ता कहा जाता है। कर्ता की पूरे परिवार के बारे में सभी प्रकार के निर्णय लेता है। इस अर्थ में भारतीय ग्रामीण परिवार को निरंकुश सामाजिक संरचना वाला परिवार भी कहा गया है। प्रमुख समाजशास्त्रियों में ग्रामीण परिवार (संयुक्त परिवार की निम्नलिखित दी हैं–

इरावती कर्वे– "एक संयुक्त परिवार में उन व्यक्तियों का समूह है जो एक ही छत के नीचे रहते हैं, जो एक–एक रसोई में पका भोजन करते हैं। जो सामान्य सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं, जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो परस्पर एक दूसरे से विशिष्ट नातेदारी से सम्बन्धित हैं।"

ए0आर0 देसाई– "हम उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकांकी परिवार की अपेक्षा अधिक पीढ़ियों (तीन या उससे अधिक) के सदस्य सम्मिलित होते

और जो एक–दूसरे से सम्पत्ति, आय और परस्पर अधिकारों तथा कर्तव्यों द्वारा बंधे होते हैं।"

NOTES

ग्रामीण भारत में जाति :

भारत में ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति–प्रथा है। इसके साथ ही यह भारत की एक परम्परागत सामाजिक संस्था भी है तथा सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता भी है। अतः इसके अध्ययन के बिना हम भारतीय सामाजिक संस्थाओं के मूलरूप को नहीं समझ सकते हैं। भारत के जाति ही व्यक्ति के कार्य, प्रस्थिति उपलब्ध अवसरों एवं असुविधाओं को तय करती है। इस संदर्भ में प्रो० एम० देसाई का कथन है कि "भारत में जाति व्यवस्था ही अधिकांशतः एक व्यक्ति के लिये उसकी प्रस्थिति कार्यों, अवसरों और प्रतिबन्धों के रूप का निर्धारण करती है। जाति–भेद के आधार पर ही ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की प्रणालियों, व्यक्ति के निवास–स्थान तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों का निर्धारण होता है। यहाँ भू–स्वमित्व की प्रकृति भी जानी जाती है। विभाजन पर ही आधारित है। ग्रामीण क्षेत्र में अनेक कारणवश प्रायः प्रशासकीय कार्य भी जातीय आधार पर विभाजित होता है।

जाति–व्यवस्था प्राचीनकाल से ही भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार रही है। इस सन्दर्भ में जाति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'जात' से मानना अधिक उचित है। क्योंकि जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के 'जन्म' या जन्म के परिवार को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जाति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत की है। जाति की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं–

मजूमदार तथा मदान– "जाति एक बन्द वर्ग है।"

केतकर– "जाति एक ऐसा समुदाय है और इसके सदस्य वही होते हैं जो इसमें जन्म लेते हैं वे सदस्य अपने सामाजिक नियमों के आधार पर अपने समुदाय के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।"

जाति पंचायत एवं प्रभुजाति :

NOTES

जाति पंचायत की उत्पत्ति इसीलिये हुई कि उसे जाति के सदस्यों के सामान्य हितों की सुरक्षा हो सके और उनके आपसी झगड़ों का निपटारा जाति में ही हो जाये। यही जाति वैदिक काल में कर्मों के अनुसार वर्ण का विभाजन हुआ और कार्यों की पवित्रता और अपवित्रता के साथ–साथ छुआछूत की भावना का जन्म हुआ और अछूत जातियों ने अपने को हिन्दू सामाजिक संरचना का जातीय संरचना से अलग पाया। इसी समय इस अछूत जातियों में असुरक्षा की भावना का जन्म हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अछूत जातियों ने अपनी जाति के सदस्यों की सुरक्षा तथा शक्ति पनपाने के लिये जाति पंचायत का निर्माण किया गया।

यह निम्न जातियों में जाति पंचायत के जन्म की पृष्ठभूमि है, पर उच्च जातियों में भी जाति पंचायत पायी जाती है। उच्च जातियों के विभिन्न वर्गों में जैसे–जैसे सामाजिक दूरी व सामाजिक प्रतियोगिता बढ़ती गयी, वैसे–वैसे अपनी जाति के हितों की रक्षा के लिये उच्च जातियों में पंचायत का जन्म हुआ। आज हम ब्राह्मण सभी, कायस्थ सभा, अग्रवाल सभा आदि अनेक जातीय संगठन देखते हैं। इनका भी उद्देश्य जातीय सुरक्षा को बनाये रखना एवं उनमें शक्ति उत्पन्न करना ही है।

प्रभु जाति :

ग्रामीण भारत में सामाजिक स्तरीकरण का मुख्य आधार जाति प्रथा है। जहाँ विभिन्न जातियाँ जजमानी प्रथा द्वारा आर्थिक रूप से एक–दूसरे पर निर्भर रही है। निम्न और उच्च जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध भू–स्वामी और काश्तकार, मालिक और सेवक, साहूकार और ऋण लेने वाले आदि के रूप में भी पाये जाते हैं। जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों, ग्रामीण एकता या ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये प्रभु जाति की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक है।

सन 1959 में प्रो0 श्रीनिवास ने मैसूर के 'रामपुरा गाँव' के अध्ययन के दौरान प्रभु जाति की आवधारणा को विकसित किया। इस अवधारणा का प्रयोग विभिन्न

विद्वानों ने अपने अध्ययन में किया और इसके सहारे उन्हें गांव के राजनैतिक संगठन, अन्तर्जातीय संघर्ष तथा सम्बन्ध एवं प्रभुत्व को समझने में सहायता मिली है।

NOTES

डॉ0 दुबे और मजूमदार– ने इस आवधारण का प्रयोग किया है। वस्तुतः भारत ग्रामीण जीवन में आज जो नवीन संरचनात्मक प्रतिमान विकसित हुए हैं, उन्हें प्रभु जाति की आवधारणा के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

■■■

NOTES

ग्रामीण भारत में धर्म :

भारत धर्म प्रधान देश है। भारत धार्मिक देश होते हुए भी परोपकारी और सहिष्णुतावादी है। 'विश्व बन्धुत्व' में उसकी अटूट आस्था है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर में आस्था रखता है जिससे सेवा–भाव उत्पन्न होता है। सभी ने सभी धर्मो को आश्रय दिया है, इसलिये भारत में एक नहीं अनेक धर्म हैं इसलिये यहाँ आस्तिक भी हैं और नास्तिक भी। सभी अपने–अपने धर्म का पालन करने में स्वतंत्र हैं। भारतीय धर्म निरन्तर बहने वाली एक नदी के समान है जो समय के साथ–साथ अनेक प्रकार के ज्ञान और अनुभव को अपने साथ समेटती चलती है। ये ज्ञान की धारायें समय के साथ न जाने कितनी धाराओं और शाखाओं में प्रस्फुटित हुई हैं। धर्म समाज में जहाँ नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है वहीं व्यक्ति के चरित्र का निर्माण भी करता है तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

शाब्दिक दृष्टिकोण से धर्म शब्द 'धृ' से बना है और इसका अर्थ है वह जो किसी वस्तु को धारण करे या उस वस्तु का अस्तित्व रखे। धर्मशास्त्र में स्पष्टतः लिखा है कि– "धारणइर्ममिप्याहु धर्मो धारयति प्रजा।" अर्थात् धारण करने वाले को धर्म कहते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति स्वयं तथा उसके सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित तथा समुन्नत करने के लिये कल्याणकारी या हितकारी नियमों पर नैतिक कर्तव्यों को ही धर्म कहते हैं।

मैलिनोवस्की– "धर्म क्रिया का एक ढंग है, साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था है और समाजशास्त्रीय घटना के साथ–साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

एडवर्ड टायलर– "धर्म का अभिप्राय आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।"

ग्रामीण भारत में आवास तथा अवस्थापना :

परम्परागत ग्रामीण समाज के सम्बन्ध स्थानीयता से बंधे होते हैं। गांव के निवासी स्थानीय आधार पर अपने सभी कार्यों को निपटाते थे। उनकी आवश्यकतायें भी

सीमित ही होती थीं। वे जाति नातेदारी और अपने गाँव के लोगों के सम्पर्क रखकर अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन को बिता देते थे। उनकी स्थिति स्थानीय होती थी। मुद्रा से उन्हें अधिक लगाव नहीं होता था। वे अपनी आवश्यकताओं को पूर्ति वस्तुओं को एक–दूसरे से बाँटकर पूरी कर लेते थे। वे प्रायः कच्चे मकानों में रहते थे। उनके घर खुले–खुले तथा दूर–दूर होते थे। गाँवों में चोरी इत्यादि की समस्या भी प्रायः न के बराबर होती थी।

NOTES

समय ने करवट ली और आधुनिक युग में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के दौर में गाँव तथा ग्रामवासियों की स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन आया है। उनकी जीवन शैली तो बदली ही है उनके रहन–सहन के ढंग में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है। शिक्षा के प्रसार, यातायात के साधनों की सुविधा, कृषि सुधार तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के कारण गाँव वासियों का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से हुआ है। गाँवों के युवा उच्च शिक्षा के लिये शहरों में आने लगे हैं। पढ़–लिखकर वे शहरों में नौकरी के लिये जाने लगे हैं। भूमिहीन मजदूर भी रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर आने लगे हैं। गाँव वासियों का निरन्तर शहरों से सम्पर्क होने के कारण वे नगरीय विशेषताएँ ग्रहण करने लगे हैं। वे अब शहरों की तरह पक्के घर बनाकर रहने लगे हैं। बिजली पानी की सुविधा मिलने के कारण वे अब अपने घरों को आधुनिक रूप देने लगे हैं। अब गाँवों में टी0वी0, रेडियो, टेलीफोन, फ्रिज, मोटर–साइकिल आदि का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गांवों का परम्परागत स्वरूप पूर्णतया विलीन होता जा रहा है और उस पर नगरीयता का आवरण चढता जा रहा है। अतः अब गाँवों के प्राचीन कृषकों की बस्तियाँ कहना उचित न होगा क्योंकि खेतों के समीप ग्रामीण आवास की प्रवृत्ति अब प्रायः लुप्त होती जा रही है। अब ग्रामीण आवासों में आधुनिक परिवर्तन की छाप देखने को मिलती है।

भारत में कृषि अर्थव्यवस्था तथा उत्पादन प्रणाली :

भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूर्णतया कृषि पर आधारित है। कृषि से जुड़े हुए अनेक व्यवसाय ग्रामीणों की आय का मुख्य साधन है। सामान्यता ग्रामीण–समाज में

जिन चीजों का उत्पादन किया जाता है। उनकी खपत भी वही हो जाती है। ग्रामीण समाज में उत्पादन और उपभोग के मध्य सन्तुलन बना रहता है। अपने सीमित साधनों में ग्रामीण अपनी सीमित आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करता है फिर भी उसे किसी न किसी रूप में नगरीय समाज पर आश्रित रहना ही पड़ता है। अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य है– ग्रामीण समाज के आर्थिक–सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाना जिससे आर्थिक ढाँचा सुदृढ़ हो सके और ग्रामीणों के रहन–सहन का स्तर अच्छा और प्रगतिशील बन सके।

NOTES

उत्पादन प्रणाली :

उत्पादन प्रणाली की पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक घटनाओं का एक ऐसा दस्तावेज है जो श्रमिको के विभिन्न युगों की शोषण के यथार्थ को व्यक्त करता है।

कार्ल मार्क्स– का सम्पूर्ण दर्शन यथार्थ जगत की घटनाओं पर आधारित है। उसके सिद्धान्तों के केन्द्र में उत्पादन प्रणाली ऐतिहासिक भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक भौमिकवाद है। इन्हीं के चारों तरफ तथ्यों का परिक्रमण इस रूप में है कि वे सभी एक दिशा की ओर अग्रसर होते हैं। ऐतिहासिक, भौतिकवाद से लेकर वर्ग–विहीन समाज की अवधारणा तक आर्थिक कारक उत्पादन प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।

उत्पादन के साधन में परिवर्तन होने के कारण केवल सामाजिक सम्बन्धों में ही बदलाव नहीं होते बल्कि विभिन्न प्रकार के संगठनों, संस्थाओं के स्वरूप में भी परिवर्तन होते हैं। नये संगठन और संस्थाओं की स्थापनायें होती हैं, जैसे– आर्थिक सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक संगठन और संस्थायें। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण आर्थिक–सामाजिक ढाँचा उत्पादन प्रणाली के आधार पर ही स्थापित होता है और इसी के आधार पर विघटित भी होता है।

वास्तव में कार्ल–मार्क्स समाज के सम्पूर्ण :

विकास को समझने, उसका विश्लेषण करने और उससे वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने हेतु आर्थिक दशाओं, उत्पादन और विनियम की दशाओं के विकास और इन आर्थिक दशाओं के कारण जन्में वर्गों के मध्य संघर्ष की जाँच पड़ताल की थी।

उत्पादन प्रणाली को हजारो–हजारो वर्षों के विकास की यात्रा से मार्क्स कुछ यथार्थ पर आधारित निष्कर्ष है।

NOTES

मारिस कार्नफार्थ :

उत्पादन प्रणाली के सम्बन्ध में लिखते हैं "समाज का सम्पूर्ण विकास उत्पादन शक्तियों के विकास तथा उसके फलस्वरूप उत्पादन में जुड़े लोगों के बीच सम्बन्धों में परिवर्तन द्वारा आधारित होता है। किसी निश्चित अवधि की उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्ध मिलकर उत्पादन की प्रणाली की रचना करते हैं। उत्पादन में श्रम के विभाजन से व्यक्तिगत सम्पत्ति का जन्म होता है और इस प्रकार शोषण तथा परस्पर विरोधी वर्गों में समाज का विभाजन आरम्भ हो जाता है।

कार्ल मार्क्स– ने उत्पादन की शक्तियों सम्बन्धी और प्रणाली का गंभीर अध्ययन किया है। इन्हीं आवधारणाओं के आधार पर मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त की स्थापना की है।

कृषक अन्तः सम्बन्ध :

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस देश की लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है जो अधिकांश कृषि के माध्यम को अपनी आजीविका चलाती है। यहाँ सक्रिय श्रम–शक्ति का लगभग 65 प्रतिशत भाग कृषि में लगा हुआ है। कृषि के द्वारा देश की राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत भाग उत्पन्न किया जाता है। वस्तुतः भारत एक विकासशील देश है। आज विकासशील देशों के सामने मुख्य समस्या केवल उत्पादन को बढ़ाने या आर्थिक विकास की नहीं है, बल्कि यह देखने की है कि उत्पादित वस्तुओं का समाज के विभिन्न वर्गों में न्यायोचित तरीके से वितरण हो, विकास कार्यक्रमों का लाभ कुछ गिने–चुने शक्ति सम्पन्न लोगों को ही नहीं मिले, समान्यजन की गरीबी कम हो और लोगों के रहन सहन का स्तर ऊँचा उठे। कृषि के क्षेत्र में चल रहे विकास के कार्यों का मूल्यांकन करने और वास्तविक स्थिति में परिचित होने के लिये यह आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम ग्रामीण कृषि संरचना को समझे यह जानने का प्रयत्न करें कि ग्रामीण भारत में कृषक सम्बन्ध किस प्रकार के हैं और ये एक रूप में पाये जाते हैं। भूमि व्यवस्था क्या है? बड़े–बड़े जमींदारों एवं भू–स्वामियों,

NOTES

छोटे भू–स्वामियों, किराये पर भूमि जीतने वालों, साझेदारी में खेती करने वालों और भूमिहीन श्रमिकों के रूप में काम करने वालों का अनुपात क्या है? भू–स्वामियों, केवल और किराये पर भूमि जोतने, वालों तथा दूसरी और भूमिहीन श्रमिकों के साथ–साथ किस प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं। कुल मिलाकर यहाँ हम यही जानने का प्रयत्न करेंगे कि ग्रामीण कृषि संरचना की प्रकृति कैसी है और उस प्रकृति से कृषक सम्बन्ध किस प्रकार के हैं?

आन्द्रे बिताई ने बताया है कि भारतीय कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिलेगी कि यहाँ स्तरीकरण की व्यवस्था और कार्य विभाजन के बीच भी एक सम्बन्ध पाया जाता है। गेहूँ की खेती और चावल की खेती वाले क्षेत्रों में भी कार्य के विभाजन की दृष्टि से काफी अन्तर देखने को मिलता है। जनगणना सम्बन्धी आंकडों से पता चलता है कि पंजाब और हरियाणा में जहाँ गेहूँ की खेती विशेषता होती है, सम्पूर्ण जनसंख्या में कृषि श्रमिकों का अनुपात संक्षेप दृष्टि से कम है जबकि पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडू तथा केरल में जहाँ गीले धान की खेती होती है, यह अनुपात अधिक है। तमिलनाडू तथा केरल में जहाँ गीले धान की खेती होती है। यह अनुपात अधिक है। यहाँ बटाईदारी में खेती का प्रचलन भी ज्यादा है।

भू– स्वामित्व एवं श्रम :

भू– स्वामित्व या भूमि व्यवस्था से तात्पर्य 1. भूमि के स्वामी 2. भूमि को जोतने वाले का भूमि के प्रति कर्तव्य, अधिकार एवं दायित्व तथा 3. मालगुजारी देने के लिये शब्दों में, भूमि पर स्थायी मालिकाना हक किस व्यक्ति का है? उस पर खेती वास्तव में कौन करता है तथा उस भूमि पर लगान निर्धारण करने की रीति क्या है? यह तीनों बातें मिलकर भूमि व्यवस्था को बताती है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि भूमि व्यवस्था का अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसके अनुसार भूमि का स्वामित्व, अधिकार एवं दायित्व निर्धारित किये जाते हैं। एक आदर्श भूमि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिसमें यह गुण हो–

1. भूमि पर जोतने वाले का स्वामित्व होना चाहिये।
2. लगान उचित मात्रा में लिया जाना चाहिये।

3. भूमि हस्तान्तरण की स्वतंत्र व्यवस्था होनी चाहिये।

4. जोतों की सीमा निर्धारित होनी चाहिये।

NOTES

जब हम कृषि क्षेत्र में पारिवारिक श्रम, वेतनभोगी श्रम तथा काश्तकारी या बटाईदारी पर आधारित उत्पादन पर ध्यान देते हैं, तो हमारी दृष्टि श्रमिकों स्वतः ही भू–स्वामी, खेतिहर लोगों, काश्तकारों, बटाईदारों एवं कृषि श्रमिकों की ओर जाती है।

जहाँ तक विभिन्न आकार के खेतों के स्वामित्व अथवा उन्हें किराये पर जोतने या उन पर वेतनमानों, श्रमिकों के रूप में कार्य करने के आधार पर लोगों को अलग–अलग वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि केवल संख्यात्मक आंकड़ों के आधार पर ऐसा करना उचित नहीं होगा।

आन्द्रे बिताई ने बताया है कि यदि हम पश्चिमी बंगाल के ग्रामीण को उदाहरण के रूप में ले तो पायेंगे कि वहां लोग अपने समुदाय को केवल जातीय आधार पर ही विभाजित नहीं मानते, बल्कि अपने को जमींदार, जोतदार, वर्गादार, माहीन्दार आदि के रूप में भी विभाजित समझते हैं। वर्गीकरण का यह दूसरा क्रम वर्ग के काफी निकट है। स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामों में सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में केवल जाति का महत्व ही नहीं पाया जाता बल्कि वर्गों का भी। ग्रामीण कृषि क्षेत्र में उत्पादन के संगठन के आधार पर लोग विभिन्न श्रेणियों में भी बंटे हुए हैं। इस विभिन्न श्रेणियों के व्यवस्थित अध्ययन के आधार पर ही कृषक सम्बन्धों को ठीक प्रकार से समझा जा सकता है।

NOTES

भूमि सम्बन्धी विधान तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना

भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना की प्रकृति को समझने के लिये गाँवों के आन्तरिक सम्बन्धों, समूहों, गाँवों को समुदायों में समुदाय के रूप में समझना होगा तथा ग्रामों की सामाजिक संरचना की स्थायी इकाइयों का अध्ययन करना होगा। प्रत्येक गाँव को सम्पूर्ण भारतीय समुदाय के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिये। क्योंकि एक गाँव अपनी अनेक स्थानीय आवश्यकताओं जैसे– धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि की पूर्ति ग्राम स्तर पर पूरी करता है, वही वह अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सम्पूर्ण भारत पर भी निर्भर है।

डॉ0 दुबे का विचार है कि प्रत्येक भारतीय गाँव का एक इतिहास होता है, मूल्यों और विचारों की एक व्यवस्था होती है। अतः प्रत्येक गाँव को अन्तःग्रामीण संगठन के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिये। कहते हैं कि भारतीय ग्रामीण संरचना को समझने के लिये लघु स्तर पर अनेक हिस्सों में गाँव का अध्ययन करके हम गाँवों के विभिन्न पक्षों एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्तकर सकते हैं। तथा उनके आधार पर भारतीय गाँवों के बारे में सामन्यीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार के अनेक अध्ययन के अभाव में भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना का स्पष्टा चित्र अंकित करना कठिन है।

ग्रामीण सामाजिक संगठन :

राबर्ड रेडफील्ड ने भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का उल्लेख करने के लिये परिवार नातेदारी, धर्म, जाति, शिक्षा, सत्ता एवं अर्थव्यवस्था आदि आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

डॉ0 दुबे– ने इनके अतिरिक्त मूल्य–व्यवस्था को भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये आवश्यक माना है। अन्य विद्वानों ने इन्हीं आधारों में अल्प संशोधन को करते हुए स्वीकार किया है। डॉ0 दुबे का विचार है कि गाँव की सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिये एक गांव को विभिन्न प्रतिमानों में इस

प्रकार विभक्त करना, आवश्यक है। जिससे इन विभिन्न प्रतिमानों का समुचित रूप से अध्ययन करके एवं सामान्य विशेषता प्रस्तुत की जा सके।

NOTES

इस दृष्टिकोण से डॉ0 दुबे ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये तो दृष्टिकोण को प्रमुख स्थान दिया है–

1. भारतीय ग्राम एक विशिष्ट, पूर्ण पृथक इकाई के रूप में।
2. भारतीय ग्राम बड़े समुदाय में एक छोटी सम्बन्धित इकाई के रूप में।

मैकिम मैरियट ने भी उत्तर प्रदेश के गाँव 'किशनगढ़ी' का इन दोनों ही दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। भारतीय गाँव की सामाजिक संरचना में दुबे नातेदारी और जाति तथा भौगोलिक सीमा के सम्बन्धों को प्रमुख मानते हैं।

भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन अनेक विद्वानों ने किया है, जिसमें दुबे, श्रीनिवास मैकिम मैरियट मिल्टन सिंगर, रेडफोल्ड, मजूमदार एवं बी0आर0 चौहान आदि प्रमुख हैं। हमें भारत में अनेक प्रकार के गाँव देखने को मिलेंगे। कई गाँव ऐसे हैं, जहाँ केवल एक ही जाति अथवा जनजाति निवास करती है, तो कई गाँवों में अनेक जातियाँ एवं जनजातियाँ साथ–साथ निवास करती हैं। जातियों एवं जनजातियों की विभिन्नता एवं सह–उपस्थिति ग्रामीण सामाजिक संरचना को प्रभावित करती है। जिस गाँव में एक ही जाति अथवा जनजाति रहती है उस गाँव की अपेक्षा बहुजाति एवं जनजातियों के साथ–साथ निवास करने वाले गाँव की सामाजिक संरचना जटिल होगी। वहाँ अन्तर्जातीय सम्बन्धों की व्यवस्था एवं उनमें जाति प्रथा देखने को मिलेगी।

ग्रामीण निर्धनता :

भारत में ऐसे लाखों परिवार हैं जो माँसल दर्ज़े का जीवन व्यतीत नहीं कर पाते हैं। उनके पास पर्याप्त भोजन एवं वस्त्रों का अभाव है। वर्तमान समय में औद्योगिक क्रान्ति ने गरीबों और अमीरों में आर्थिक विषमता पैदा कर दी है। आज सम्पूर्ण विश्व आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न (अमीर) एवं विपन्न (गरीब) दो भागों में बँट गया। अतः जीवन दो भौतिक आवश्यकतायें अन्न वस्त्र गृह हैं। सामाजिक दृष्टि से निर्धन व्यक्ति वह है, जिसको पेट भरने को अन्न नहीं मिलता, पहनने के लिये वस्त्र नहीं मिलते तथा रहने

NOTES

के लिये घर नहीं है। दूसरे शब्दों में, जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों का अभाव गरीबी या निर्धनता है। आज भारत की प्रति व्यक्ति आय 500 अमेरिकी डालर है। विश्व के समृद्धतम् देश की प्रति व्यक्ति आय 50000 अमेरिकी डालर है। भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करता है।

जे0डी0 गोहार्ड दरिद्रता उन चीजों का अभाव है जो एक व्यक्ति और उसके आश्रितों को स्वस्थ व संतुष्ट रखने के लिये जरूरी है।

एडम स्मिथ– "एक आदमी उन्हीं अंशों में धनी और निर्धन होता है जिन अंशों में उसे जीवन की आवश्यकतायें, सुविधायें एवं मनोरंजन के साधन उपभोग के लिये प्राप्त हो सकते हैं।"

ग्रामीणों की प्रवासिता:

प्रवाह या देशान्तरण का वास्तविक अर्थ स्थायी रूप से किया गया स्थान परिवर्तन है। प्रवासित वह व्यक्ति माना जाता है जो किसी राजनीतिक सीमा को (भले ही यह जिले की सीमा हो) पार करके दूसरे स्थान पर स्थायी रूप से बस जाना है।

'प्रवासी प्रवृत्ति' दो शब्दों के मेल से बना है– 1. प्रवासी एवं 2. प्रवृत्ति। प्रवासी शब्द का अर्थ है मूल स्थान को छोड़कर जाना कहीं अन्यत्र बस जाना तथा बार–बार मूल स्थान को आते–जाते रहना। 'प्रवृत्ति से आशय है, स्वभाव या आदत। इस प्रकार 'प्रवासी प्रवृत्ति' का अर्थ हुआ मूल स्थान को छोडकर कही अन्यत्र बस जाना तथा मूल स्थान से निरन्तर सम्बन्ध बनाये रखने की आदत। ग्रामीण नगरीय सातव्य इसी अवधरणा से सम्बन्धित है।

प्रवास की प्रवृत्ति को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

1. दैनिक प्रवास–

दैनिक प्रवास जैसा कि नाम से स्पष्ट है। गाँवों से नगरों की ओर वह प्रवास है जो प्रतिदिन समान रूप से होता है। जो गाँव शहरों के समीप होते हैं। वहाँ के निवासी

नौकरी, व्यापार शिक्षा तथा अन्य कारणों से प्रायः रोजाना गाँवों से नगरों की ओर जाते हैं और कार्य समाप्त हो जाने पर शाम को गाँव लौट आते हैं।

NOTES

2. मौसमी प्रवास :

गाँवों से नगरों की ओर जो दूसरा प्रवास होता है वह एक किसी विशेष मौसम में ही होता है और जैसे ही वह समाप्त हो जाता है, प्रवासी प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है जैसे - फसल के समय तथा अन्य मौसमी कार्यों के सम्पादन के लिये जैसे ही मौसम में परिवर्तन होता है, प्रवास की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है। जब ग्रामीण लोग कृषि कार्य से मुक्त हो जाते हैं तो उनमें प्रवास की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

3. आकस्मिक प्रवास :

कभी-कभी प्रवास अचानक होता है। यह प्रवास दैनिक और मौसमी प्रवास से भिन्न प्रकृति का होता है। कभी–कभी कुछ विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिनके कारण व्यक्ति को अचानक प्रवास करना पड़ जाता है। जैसे– बीमारी, अदालत, सामाजिक और धार्मिक उत्सव तथा अन्य प्रकार की परिस्थितियाँ।

4. स्थायी प्रवास :

स्थायी प्रवास वह है जिसमें व्यक्ति पूरी तरह से गाँव छोड़कर नगर में निवास करने लगता है। जब कोई व्यक्ति गाँव को छोड़कर नगर चला जाता है तो फिर उसकी इच्छा गाँव की और लौटने की नहीं होती है।

खेतिहर एवं भूमिहीन मजदूर :

श्रम के राष्ट्रीय आयोग ने खेतिहर मजदूरों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है–

1. भूमिहीन मजदूर
2. सीमान्त किसान

इन दोनों श्रेणियों की आय का मुख्य साधन कृषि जोत के बहुत छोटे होने के कारण मजदूरी करना है। भूमिहीन मजदूरों या श्रमिकों के भी दो भागों में बाँटा गया है।

1. स्थायी श्रमिक वे हैं जो कृषक परिवारों से बंधे होते हैं। 2. अस्थायी श्रमिक वे छोटे किसान होते हैं जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि होती है। अतः ये दूसरों की भूमि पर

मजदूरी करते हैं या दूसरों की भूमि को ठेके पर लेकर खेती करते हैं। या बटाई पर खेती करते हैं। खेतिहर मजदूर, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर कुल ग्रामीण परिवारों के 72.2 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं, ये सभी ग्रामीण लोग गरीब हैं।

NOTES

सन 1961 में देश में 3.15 करोड़ खेतिहर मजदूर एवं 9.95 करोड़ किसान थे। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में खेतिहर मजदूरों की संख्या 4.75 करोड़ थी। 1981 की जनगणना के अनुसार देश में 5.6 करोड़ खेतिहर मजदूर थे। 1991 की जनगणना के अनुसार देश में 7.8 करोड़ खेतिहर मजदूर थे जबकि वर्तमान में इनकी संख्या बढ़कर 10.6 करोड़ हो गई है। 1990–91 में देश में कुल जोतों का 59 प्रतिशत सीमान्त किसान 19 प्रतिशत लघु किसान, 13.2 प्रतिशत, अर्हमध्यम किसान, 7.2 प्रतिशत मध्यम एवं 1.6 प्रतिशत बड़े किसान थे। इस प्रकार खेतिहर मजदूर जिनमें भूमिहीन भी सम्मिलित है, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर ग्रामीण कमजोर वर्ग का निर्माण करते हैं। ग्रामीण वर्ग व्यवस्था में सबसे निम्न स्थान खेतिहर एवं कृषि मजदूरों का है और गाँवों में इनकी संख्या ही सर्वाधिक है। ये लोग दूसरे के खेती पर मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

खेतिहर एवं भूमिहीन मजदूरों की हीन आर्थिक स्थिति के कारण :

कृषि श्रमिकों को दी गयी मजदूरी के आँकड़ों से पता चलता है कि देश के कुछ भागों जैसे– केरल, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश को छोड़ कृषि श्रमिकों को अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी प्राप्त नहीं होती। इन राज्यों में भी स्त्रियों को अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी के अनुसार मजदूरी नहीं दी जाती।

खेतिहर या भूमिहीन मजदूरों की दयनीय आर्थिक स्थिति के अनेक कारण है। उनकी कम मजदूरी और हीन आर्थिक स्थिति के प्रमुख कारण निम्नलिखित है।

1. निम्न सामाजिक स्थिति :

अधिकांश कृषि, उपेक्षित एवं दलित जातियों के सदस्य है। उनमें कभी भी दबंग बनने का साहस नहीं रहा। उनकी स्थिति निरही–मूक पशुओं की सी रही है।

2. असंगठित श्रम :

कृषि श्रमिक अनपढ़ और अजागरूक है। वे गाँवों में बिखरे हुए संगठित में रहते हैं।

3. मौसमी रोज़गार :

NOTES

कृषि श्रमिकों को सारा वर्ष लगातार काम नहीं मिल पाता। खेतिहर व भूमिहीन मजदूरों की कम आय और हीन आर्थिक स्थिति के लिये जिम्मेदार है।

4. कृषि भिन्न व्यवसायों की कमी :

ग्रामों में कृषि भिन्न व्यवसायों की कमी भी कृषि श्रमिकों की कम मजदूरी और हीन आर्थिक दशा के लिये जिम्मेदार है।

5. ऋणग्रस्तता :

कृषि श्रमिक पूरी तरह ऋण ग्रस्त हैं। साधारणतया ये श्रमिक अपने भू–स्वामियों से ही ऋण लेते हैं। इन्हें कम मजदूरी स्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ता है।

6. प्रवासी प्रवृत्ति :

भारतीय मजदूरी में विशेषतः प्रवासी प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके पीछे प्रमुख कारण है कि जब श्रमिक को गाँव में मजदूरी नहीं मिलती तो वह शहर में कारखानों में कार्य करने के लिये आ जाता है।

NOTES

ग्रामीण समाज के लिये नियोजित परिवर्तन

भारत में ग्रामीण जनता की दशा वास्तव में बहुत दयनीय रही है। विभिन्न समस्याओं ने इसके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को खोखला बना दिया है। आज भी गाँव के अधिकांश निवासी उचित भोजन, कपड़ा तथा मकान से वंचित है। इस दयनीय दशा से उनका उद्धार करना आवश्यक है। भारत के लगभग 5.80 लाख गाँवों में भारत की 72 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। अतः सम्पूर्ण भारत के विकास के लिये ग्रामीण विकास अति आवश्यक है। ग्रामीण समाज के विकास के लिये नियोजन आवश्यक है। जिसके फलस्वरूप ग्रामीण लोगों की दशा में परिवर्तन हो सके। यही कार्य ग्रामीण समाज के लिये नियोजित परिवर्तन कहलायेगा।

ग्रामीण समाज में नियोजित परिवर्तन के लिये विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं ने अनेक कार्यक्रम चलाये गये जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम :

2 अक्टूबर 1952 को महात्मा गांधी के जन्म दिवस पर देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य इस प्रकार है–

1. जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना।
2. गाँव में उत्तरदायी और क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना।
3. समस्त ग्रामीण जनता को आत्मनिर्भर और प्रगतिशील बनाना।
4. समस्त ग्रामवासियों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये कृषि का आधुनिकीकरण तथा ग्रामीण उद्योग का विकास करना।
5. राष्ट्र के भावी नागरिकों को समुचित विकास करना।
6. ग्रामीण शिक्षकों के हितों की रक्षा करना।
7. ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य के स्तर को उन्नत करना आदि।

2. लघु कृषक विकास एजेन्सी तथा सीमान्त किसान एवं कृषि श्रमिक परियोजनायें :

ग्रामीण निर्धनता का एक बड़ा वर्ग लघु कृषक सीमान्त कृषक तथा कृषि श्रमिक है। छोटे किसानों के कार्यक्रमों जैसे– लघु सिंचाई, भूमि विकास, भू संरक्षण तथा पशुपालन आदि में लगाये धन के 25 प्रतिशत तथा सीमान्त किसानों को 33.34 प्रतिशत के बराबर आर्थिक सहायता दी जाती है।

NOTES

3. सूखे की सम्भावना वाले क्षेत्रों के लिये कार्यक्रम :

देश की कृषि भूमि का एक ऐसा भाग है, जो निरन्तर सूखाग्रस्त रहता है। 13 राज्यों में पूर्ण या आंशिक रूप से 74 जिलों को सूखाग्रस्त माना गया है। इन क्षेत्रों के विकास तथा इन क्षेत्रों के कमजोर वर्ग की स्थिति में सुधार के लिये 1970–71 में सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम की शुरूआत की गयी। इस कार्यक्रम में लघु तथा सीमान्त कृषक के लगभग 70 लाख लोगों को लाभ मिल रहा है।

4. विशेष पशुधन उत्पादन कार्यक्रम :

1975 में शुरू किया गया विशेष पशुधन उत्पादन कार्यक्रम कमजोर वर्गों और ग्रामीण जनता को रोजगार से अधिक अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से चलाया गया है। यह कार्यक्रम 21 राज्यों एवं 4 संघ राज्यों में जारी है। संकर बछड़ा पालन के लिये लघु सहायता दी जाती है। बीमा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी खर्च में भी सहायता दी जाती है। सुअर पालन, भेड़ पालन के लिये बनाई गयी योजना के अन्तर्गत लघु कृषकों को 25 प्रतिशत की दर से आर्थिक सहायता दी जाती है।

5. पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम :

पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि तथा किसानों के जीवन के स्तर में सुधार के लिये चौथी योजना में हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में भारत, जर्मन सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ विशेष कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये पाँचवी योजना में भी इस चालू रखा गया।

6. मरूस्थल विकास कार्यक्रम :

सन 1977–78 में शुरू किया गया मरूस्थल विकास कार्यक्रम 152 प्रखण्डों में चल रहा है। मस्थली क्षेत्रों का विकास जिसके लिये भौतिक, मानवीय तथा अन्य

संसाधनों और पशुधन का उपयोग करते हुए यहाँ के निवासियों की उत्पादन क्षमता, आय स्तर एवं रोजगारों के अवसरों में वृद्धि की जाती है।

NOTES

7. काम के बदले अनाज कार्यक्रम :

काम बदले अनाज मूल रूप से एक विकास कार्यक्रम है जिसे अप्रैल 1977 में शुरू किया गया है।

8. अंत्योदय कार्यक्रम :

यह गाँव के सबसे कमज़ोर वर्ग की आर्थिक स्थिति सुधारने की विशिष्ट योजना है। इस कार्यक्रम की अपनी कुछ विशेषतायें हैं।

9. समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम :

इस कार्यक्रम के 1977–78 में छोटे पैमाने पर लागू किया गया। प्रारम्भ में देश के सिर्फ 2300 प्रखण्डों में जहाँ छोटे किसानों के लिये विकास एजेन्सी, सीमान्त किसानों तथा कृषि मजदूरों की एजेन्सी, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम लागू थे।

10. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम :

सन 1977–78 में काम के बदले अनाज कार्यक्रम लागू किया गया था। छठी योजना में इसका नाम बदलकर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम रख दिया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों के लिये अतिरिक्त श्रम की सृष्टि के लिये श्रम प्रधान परियोजनाओं, जैसे– भूमि तथा जल संरक्षण, भूमि सुधार, सड़क निर्माण, लघु सिंचाई का निर्माण, सामाजिक वनरोपण, स्कूल तथा ग्राम पंचायत के लिये भवन निर्माण आदि को लागू किया जाता है।

11. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम :

इस कार्यक्रम को 1983–84 में लागू किया गया। यह रोजगार कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम का पूरक है। इन परिवारों के कम से कम एक सदस्य को साल में 100 श्रम दिन रोजगार की व्यवस्था करना है।

12. न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम :

इस कार्यक्रम का प्रारम्भ 1972 में हुआ। इसका उद्देश्य निम्न आय वाले वर्ग के लोगों के लिये राज्य के द्वारा कुछ आधारभूत आवश्यकताओं की व्यवस्था करना जैसे

पीने का पानी, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, ग्रामीण सड़क, ग्रामीण आवास, ग्रामीण विद्युतीकरण, पौष्टिक आहार की व्यवस्था आदि।

NOTES

13. बीस सूत्री कार्यक्रम :

इस कार्यक्रम की घोषणा 1975 में की गयी थी। जिसे 1980, 1982, 1986 में संशोधित किया गया। इसे 1 अप्रैल 1987 के नये रूप में लागू किया गया। इस कार्यक्रम के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. गरीबी पर प्रहार
2. वर्षा पर आधारित खेती
3. अधिक उपज
4. सिंचाई का अधिक प्रयोग
5. भूमि सुधार लागू करना।
6. ग्रामीण श्रमिकों के लिये विशेष कार्यक्रम
7. पीने का साफ जल
8. सभी के लिये स्वास्थ्य
9. दो बच्चों का आदर्श
10. शिक्षा का विस्तार
11. अनुसूचित जाति एवं जनजाति को न्याय
12. औरतों के लिये समानता
13. नवयुवकों के लिये नये अवसर
14. लोगों के लिये आवास
15. गन्दी बस्तियों का सुधार
16. वनरोपण
17. उत्तरदायी प्रशासन शामिल है।

14. जवाहर रोजगार योजना :

NOTES

भारत के गाँवों में रहने वाले निर्धनों के लिये बडे पैमाने पर रोज़गार की व्यवस्था करने के लिये तत्कालीन प्रधानमंत्री ने 28 अप्रैल 1989 को संसद में एक योजना की घोषणा की जिसे जवाहर योजना कहते हैं।

15. प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण विकास) :

यह योजना वर्ष 2000 में शुरू की गई जिसके अन्तर्गत 200 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान 2001–02 के लिये रखा गया और 2001–02 में ग्रामीण विकास के लिये 126.34 करोड रूपये प्रदान किये गये।

16. समग्र आवास योजना :

1 अप्रैल 1999 में समग्र आवास योजना के नाम से एक नई योजना की शुरूआत की गयी है। जिसका उद्देश्य आवास स्वच्छता और पेयजल की समग्र व्यवस्था करना है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ–साथ लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है।

17. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना :

यह एक नई स्वरोजगार योजना है जिसे 1 अप्रैल 1999 से लागू किया गया। इस योजना में पूर्व से चल रहे निम्नांकित छः विषयों का विलय किया गया–

1. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम।
2. ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम–'ट्राइसेम'।
3. ग्रामीण क्षेत्र में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम– 'डवाकरा'
4. ग्रामीण दस्तकारों को उन्नत औजार किट आपूर्ति कार्यक्रम
5. गंगा कल्याण योजना तथा दस लाख कुआँ योजना।

18. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम :

15 अगस्त 1995 से राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम लागू किया गया। इस कार्यक्रम के तीन महत्वपूर्ण घटक है–राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन स्कीम, (नेशनल ओल्डएज पेंशन स्कीम), राष्ट्रीय परिवार लाभ स्कीम (नेशनल फैमिली वैनेफिट स्कीम) और राष्ट्रीय

प्रसव लाभ स्कीम (नेशनल मेटरनिटी बैनेफिट स्कीम), जबकि एन0एम0बी0एस0 को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को 1 अप्रैल 2001 से स्थानांत्रित कर दिया गया।

NOTES

19. अन्नापूर्णा योजना :

केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 1 अप्रैल 2000, से अन्नापूर्णा योजना चलाई जा रही है। 14 जनवरी 2001 से अन्नापूर्णा योजना का विस्तार किया गया और इस योजना के दायरे में राष्ट्रीय वृद्धापेंशन पा रहे लोगों को भी सम्मिलित किया गया।

20. कापार्ट (कौंसिल फॉर एडवांसमेंट् ऑफ पीपुल्स एक्शन एंड रूरल टेक्नोलॉजी):

सितम्बर 1986 में इसकी स्थापना हुई जिसका उद्देश्य ग्रामीण समृद्धि के लिये परियोजना कार्यान्वयन में स्वैच्छिक कार्यों को प्रोत्साहन देना और उसमें सहायता करना है। 30 नवम्बर 2000 तक कापार्ट ने 16265 परियोजनाओं के लिये 552 करोड़ रूपये स्वीकृत किया। कापार्ट की गतिविधियों में सम्मिलित हैं– ग्रामीण तकनीकी पब्लिक सहकारी स्कीम, सूखा–बहुल क्षेत्र कार्यक्रम, सूक्ष्मवित्त, वाटरशैड डेवलपमेन्ट प्रोग्राम आदि।

21. त्वरित ग्रामीण जलपूर्ति कार्यक्रम :

अप्रैल 2000 में भारत सरकार द्वारा प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के अन्तर्गत पाँच कार्यक्रम ग्रामीण पेयजल, ग्रामीण आवास, प्राथमिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा एवं पोषण से सम्बन्धित चालू किये गये हैं। पेयजल सप्लाई भी शुरू किया गया, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तियों को सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता को तेजी से बढाया जा सके। कुछ कार्यक्रम एक्सीलरेटेड रूरल वाटर सप्लाई प्रोग्राम एवं प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना विशेष रूप से पेयजल समस्या के निदान हेतु शुरू किये गये।

22. जल संभरण परियोजना :

राष्ट्रीय संसाधन में भूमि काफी महत्व की है। ग्रामीण इलाकों की आर्थिक वृद्धि एवं विकास हेतु भूमि में कुशलतम प्रबन्धन की जरूरत है। देश के भौगोलिक क्षेत्र की लगभग 20 प्रतिशत (63 मिली0 हेक्टेयर) बंजर भूमि डीग्रेटेड भूमियों में है, जिससे

सुधार की आवश्यकता है। विगत दो वर्षों में जल संभरण परियोजना 62 लाख हेक्टेयर बंजर भूमि को विकसित करने के लिये शुरू की गयी।

NOTES

23. गरीबी हटाओं प्रोग्राम :

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निरोधक कार्यक्रम भी चालू है। इसके फलस्वरूप ग्रामीण गरीबी 1973–74 की 56 प्रतिशत से घटकर 1999–2000 में 27 प्रतिशत तक हो गयी।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण विकास कार्यों के लिये वर्ष 2000–01 में 9760 करोड़ रूपये, 2001–02 में 12265 करोड़ रूपये, 2002–2003 में 13670 करोड़ रूपये, 2003–04 में 14070 करोड़, 2004–05 में 15998 करोड़ रूपये व्यय किये तथा चालू वित्तीय वर्ष 2005–06 में यह राशि बढाकर 24480 करोड़ रूपये कर दी गयी। वर्तमान समय में सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध किये जाने से ग्रामीण विकास की गति तीव्र हुई है और ऐसी आशा की जाती है कि ग्रामीण तथा नगरीय भारत के बीच अन्तर कम होगा।

पंचायती राज व्यवस्था एवं स्थानीय स्वाशासी सरकार :

यद्यपि भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने का सबसे पहला प्रयत्न बंगाल सरकार की ओर से हुआ। सन 1919 में बंगाल सरकार ने 'बंगाल ग्राम पंचायत अधिनियम' पारित किया। सन 1920 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और मुम्बई प्रान्तों में ग्राम पंचायत सम्बन्धी एक्ट बनाये गये। इसके पश्चात् बिहार, उड़ीसा, आसाम, ट्रावनकोर, कोचीन, पंजाब तथा मैसूर आदि प्रान्तों में पंचायत अधिनियम पास किये गये। किन्तु अंग्रेजी सरकार के ये सब प्रयत्न अधिकांशतः दिखावे थे। वास्तव में गैर सरकारी तौर पर पंचायतों का पुर्निर्माण करने की दिशा में अनेकों समाज सुधारकों और राजनैतिक नेताओं ने महत्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं।

स्वतंत्रता से पहले ग्राम पंचायतें :

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस यद्यपि प्रमुख रूप से राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य कर रही थी, किन्तु गांधी की प्रेरणा से यह संस्था भारत की बहुमुखी सामाजिक संस्था के रूप में विकसित हुई। सन 1990 में गांधी के नेतृत्व से पूर्व भी

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में यह घोषणा की गयी कि उसका उद्देश्य ग्राम पंचायत तथा उससे ऊपर के समस्त निकायों का प्रशासन निर्वाचन प्रणाली के द्वारा कराना होगा।

NOTES

श्रीमती एनीबेसेन्ट ने सन 1917 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में ग्राम पंचायतों के महत्व की ओर संकेत करते हुए कहा– "आर्थिक और नैतिक पतन को स्वस्थ और रूचिकर ग्रामीण जीवन की पुनर्स्थापना से ही रोका जा सकता है और यह सरकार की इकाई के रूप में पंचायतों की पुर्नस्थापित पर आश्रित है"।

राजगोपालाचारी ने अपने पत्र 'यंग इण्डिया' में लिखा कि जनक्रान्ति का सर्वोत्तम साधन ग्राम पंचायतें ही हैं।

महात्मा गांधी ने कांग्रेस के द्वारा चलाई जाने वाली ग्राम पंचायतों के कार्यक्रम को निर्धारित करने के लिये दस नियम बनाये। सन 1931 में 'गोलमेज कांफ्रेन्स में उन्होंने घोषित किया कि ग्राम पंचायतों के रूप में स्वतंत्र रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों की ग्राम इकाइयाँ होगी जो केन्द्रीय विधान मण्डल को चुनेंगी।

स्वतंत्रता के बाद ग्राम पंचायतें :

गांधी जी की पंचायतों के स्वप्न पर सबसे पहला आघात उन्हीं के अनुयायियों के हाथों हुआ, जब सन 1947 में संविधान निर्मात्री परिषद ने संविधान बनाते समय पंचायतों को उसमें कोई स्थान नहीं दिया। इस महान विधिवेत्ता के विचार की सभी राष्ट्रभक्त महापुरूषों और जननेताओं ने निन्दा की। फलस्वरूप सन 1948 के सन्थानम के प्रस्ताव पर पंचायतों की स्थापना को नीति निर्देशक तत्वों में स्थान दिया गया।

वर्तमान काल में पंचायतों का पुनर्गठन :

पंचायती राज व्यवस्था को आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समुचित अधिकार दिये गये हैं। उनको स्वशासन के अधिकार सौंपे गये हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क तथा पानी, खेती, उद्योग–धन्धों, भवन निर्माण, प्रशासन और न्याय आदि से सम्बन्धित विभिन्न कर्तव्यों को पूर्ण करने की व्यवस्था पंचायतें करती हैं।

NOTES

73वाँ संविधान (संशोधन) विधेयक 1992 के लागू हो जाने के बाद पंचायती राज को ग्रामीण विकास, मंत्रालय के एक विभाग के रूप में चलाया जाता रहा है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये 42874 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया, वहीं दशवीं पंचवर्षीय योजना में 76774 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (यू0पी0ए0) सरकार के सत्ता में आने के बाद प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने पंचायती राज व्यवस्था के लिये एक अलग मंत्रालय बना दिया।

ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय :

ग्रामीण समुदाय :

प्रारम्भ में व्यक्ति को खेती करने का ज्ञान नहीं था। वह खाने–पीने की वस्तुएँ जुटाने के लिये इधर–उधर भटकता फिरता है। किन्तु धीरे–धीरे उसने खेती करना सीखा। जहाँ उपजाऊ जमीन थी, वहीं पर कुछ लोग स्थायी रूप से बस गये और खेती करने लगे। इस प्रकार कुछ परिवारों के लोगों के एक ही भू–खण्ड पर निवास करने, सुख–दुःख में एक दूसरे का हाथ बटाने और मिलकर प्रकृति के संघर्ष करने से उनमें सामुदायिक भावना का विकास हुआ। इसी से ग्रामीण समुदायों की उत्पत्ति हुई। ग्रामीण समुदाय की परिभाषा देना कठिन कार्य है। क्योंकि गाँव की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। फिर भी कुछ विद्वानों ने ग्रामीण समुदाय को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

ग्रामीण समुदाय का अर्थ एवं परिभाषायें :

सामान्य शब्दों में गाँव एक ऐसा समुदाय है जहाँ अपेक्षाकृत अधिक समानता, अनौपचारिकता, प्राथमिकता, समूहों की प्रधानता, जनसंख्या का कम घनत्व तथा कृषि व्यवसाय की प्रधानता जैसी प्रमुख विशेषतायें पाई जाती हैं, ग्रामीण समुदाय की परिभाषायें–

मैरिल एवं एल्ड्रिज– "ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं एवं व्यक्तियों का समावेश होता है जो एक छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राथमिक हितों द्वारा आपस में बंधे रहते हैं।"

अतः ग्रामीण समुदाय का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। इसी में व्यक्ति निवास करते हैं। उनका मुख्य पेशा कृषि होता है। समुदाय में उनका सामान्य जीवन व्यतीत होती है। ग्रामीण समुदाय में सामुदायिक भावना पाई जाती है।

NOTES

नगरीय समुदाय :

नगरीय समुदाय, नगरीय क्षेत्र तथा नगर पर्यायवाची शब्द है जिनकी कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। विभिन्न देशों में नगरीय शब्द का अर्थ एक जैसा नहीं है। उदाहरण के लिये ग्रीनलैण्ड में 300 निवासियों के क्षेत्र को, अर्जेण्टाइना में 1000, भारत में 5000, इटली तथा स्पेन में 10000, अमेरिका में 20000 तथा कोरिया में 40000 निवासियों के क्षेत्र को नगरीय क्षेत्र कहा जाता है। नगर के क्षेत्र के विषय में भी भिन्न–भिन्न धारणायें हैं। जैसे– हंगरी के नगरों में बहुत सा कृषि क्षेत्र सम्मिलित होता है लेकिन अमेरिका में म्यूनिसिं पैलिटी को बहुधा नगर मान लिया जाता है। यद्यपि इसमें बहुत सा ग्रामीण क्षेत्र भी सम्मिलित होता है।

सामाजिक जीवन के संगठन के रूप में ग्राम तथा नगर दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। ग्राम तथा नगर के मध्य कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती है। नगरीय समुदाय की परिभाषा नगर शब्द पर निर्भर है। नगर की परिभाषा विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न है तथा एक ही देश में भी विभिन्न जनगणना वर्षों में इसकी परिभाषा में अनेक परिवर्तन किये जाते हैं।

लुईस विर्थ :

"नगर अपेक्षाकृत एक व्यापक, घना तथा सामाजिक दृष्टि से विजातीय व्यक्तियों का स्थायी निवास क्षेत्र है। इन्हीं के आधार पर नगरीय समुदाय के लक्षण निश्चित किये जाने चाहिये।

भारत में 1991 की जनगणना में नगरीय क्षेत्र की परिभाषा निम्नलिखित कसौटियों के आधार पर दी गयी है–

अ. वे सभी स्थान जहाँ पर नगर महापलिका, कैंट कोई अथवा अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति इत्यादि है।

ब. वे सभी स्थान जहाँ–

1. कम से कम 5000 की आबादी है।
2. कार्यरत् पुरूष जनसंख्या का तीन चौथाई भाग और कृषि व्यवसाय में लगा हुआ है।
3. प्रति वर्गमील 400 व्यक्तियों का घनत्व है।

NOTES

सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामीण विकास की रणनीतियाँ :

वर्तमान समय में सामुदायिक विकास का सम्बन्ध ग्रामीण विकास से जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य गाँवों में जीवन निर्वाह की मुख्य दशाओं में सुधार करना है। सामुदायिक संगठन तथा विकास का तात्पर्य भी यही है कि समाज की स्थानीय क्रियाओं द्वारा प्रगति हो। इसी को दूसरे देशों में कई नामों से जाना जाता है। जैसे– ग्रामीण पुनर्निर्माण, ग्रामोत्थान, जनशिक्षा तथा सामाजिक संगठन या सामुदायिक विकास। भारत में प्रथम योजना के प्रारम्भ में इसे 'ग्रामीण पुनर्निर्माण' या 'ग्रामोद्वार' का नाम दिया गया था।

2 अक्टूबर 1952 में 'सामुदायिक विकास और विस्तार सेवा कार्यक्रम' का प्रारम्भ हुआ। इस योजना को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सहायता से भारत में लागू किया गया। देश में 55 सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया। इसी समय अन्न उपजाओ जाँच समिति ने गाँव के सर्वांगींण विकास के लिये एक ऐसे राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की सिफारिश की जो घर–घर पहुँच सके और ग्रामीण विकास कार्य में उन्हें सहभागी बना सके। सिफारिशों से जहाँ सामुदायिक विकास योजना से विकसित होने में सहायता मिली, वहीं राष्ट्रीय विस्तार सेवाखण्ड' की भी स्थापना की गयी। इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम दो भागों में विभाजित हो गया–

1. सामुदायिक विकास योजना
2. राष्ट्रीय विस्तार सेवा

1. सामुदायिक विकास योजना का अर्थ :

सामुदायिक विकास योजना का सामान्य किसी समुदाय का विकास करना है। इस विकास है। इस विकास के अन्तर्गत मूलतः आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष स्वतः आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में समुदाय की प्रगति इस प्रकार से की जाये कि

उसका सर्वांगींण विकास हो सके। सामुदायिक विकास योजना को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

NOTES

ए0आर0 देसाई :

"सामुदायिक विकास योजना वह पद्वति है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना गाँव के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का स्थानान्तरण करने की एक प्रक्रिया प्रारम्भ करना चाहती है।"

कारल सी0 टेलर :

"सामुदायिक योजना वह प्रणाली है, जिसके द्वारा व्यक्ति, जो स्थानीय गाँवों में रहते हैं, अपनी आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं का उत्पन्न करने में सहायता देने के लिये प्रवृत्त होते हैं तथा भौतिक उन्नति के विकास में प्रभावशाली कार्यकारी समूह बनाते हैं।"

योजना आयोग :

"यह स्वयं ग्रामवासियों द्वारा आयोजित तथा कार्यान्वित किया हुआ एक अनुदान प्राप्त आत्मनिर्भर कार्यक्रम है। सरकार तो केवल टेक्नीकल मार्गदर्शन और आर्थिक सहायता प्रदान करती है।"

ग्रामीण विकास की रणनीतियाँ :

भारत में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया सन 1951 में आरम्भ हुई। तब से अब तक 9 पंचवर्षीय योजनायें पूरी हो चुकी हैं और 10वीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) चल रही है। ग्रामीण विकास की रणनीतियों के तहत विभिन्न पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम संचालित किये गये। इस योजनाओं और कार्यक्रमों के द्वारा आर्थिक क्रियाओं तथा ग्रामीण विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन क्रियाओं को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

वास्तव में 'रणनीति' से तात्पर्य किसी कार्य योजना अथवा कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये कारगर कदम उठाना तथा समय–समय पर उसकी प्रगति की समीक्षा

करना तथा समुचित निगरानी की व्यवस्था करना, उसकी खामियों को दूर करना तथा उस योजना से सम्बन्धित अधिकारियों की जवाबदेही निश्चित करना।

NOTES

ग्रामीण विकास की रणनीतियों के सफल क्रियान्वयन के फलस्वरूप ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की उपयोगिता बढ़ी है। इन कार्यक्रमों को ग्रामीण समाज के निर्धन बेरोजगार अर्थ बेरोजगार एवं सीमान्त कृषक एवं श्रमिकों की दयनीय आर्थिक स्थिति को परिवर्तित करने का श्रेय प्राप्त किया है। असंख्य ग्रामीण व्यक्ति जो गरीबी की रेखा के नीचे थे। आज उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है। आज वे इस रेखा से कहीं ऊँचे उनकी स्थिति है। उनकी जीवन शैली, सोच व मानसिकता में समयानुकूल परिवर्तन आया है। यह विकास का एक सुखद लक्षण है। ग्रामीणों ने विकास कार्य में रूचि लेनी आरम्भ की है। वे अब ग्रामीण विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों के महत्व को समझने लगे हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता पूर्णनिष्ठा से होने लगी है।

सरकारी आँकड़े इस तथ्य के साक्षी हैं कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं। उदाहरण के लिये, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (1999) के आंकड़ों के अनुसार कृषि क्षेत्र में प्रगति एवं निर्बल वर्गों की सहायता के फलस्वरूप 1992–93 से 1996–97 के मध्य लगभग 108.2 लाख परिवारों की सहायता दी गयी। इसमें से 50 प्रतिशत अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित थे। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत आय के हस्तान्तरण से कुल ग्रामीण जनसंख्या के 11 प्रतिशत व्यक्तियों को लाभ हुआ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना :

इस पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास पर अधिक बल दिया गया था। केन्द्र सरकार की ग्रामीण विकास की रणनीति एवं कार्यक्रम इस तथ्य से स्पष्ट होते हैं कि केन्द्रीय बजट का लगभग 50 प्रतिशत अंश ग्रामीण समाज के विकास पर किया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना :

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत 182 लाख परिवारों के लिये स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने का लक्ष्य था जबकि इस लक्ष्य पर 3316 करोड़ रूपये का व्यय

किया गया। ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के अन्तर्गत अनुसूचित जाति के परिवारों को 50 प्रतिशत अंशदान देने की व्यवस्था की गयी।

NOTES

नौवीं तथा दशवीं पंचवर्षीय योजना :

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को इन पंचवर्षीय योजनाओं में भी जारी रखा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को कायम रखने के लिये ग्रामीण विकास के लिये आवंटन में पर्याप्त वृद्धि की गयी है। वर्ष 2001–02 के लिये बजट प्रावधान 12265 करोड़ रूपये की तुलना में वर्ष 2002–03 में यह बजट प्रावधान 1367 करोड़ रूपये रखा गया। वर्ष 2003–04 के लिये इसमें वृद्धि करके यह 14070 करोड़ रूपये कर दिया गया और चालू वित्त वर्ष 2004–05 के लिये यह बढ़ाकर 15998 करोड़ रूपये किया गया है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्राथमिकता :

सरकारी रणनीति के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गयी है। प्रत्येक वर्ष इन कार्यक्रमों की समीक्षा पर उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के प्रयास किये गये हैं। इसके परिणामस्वरूप बहुत उत्साहजनक रहे हैं। देश की औसत आबादी के सम्बन्ध में अगर हम देखें तो ग्रामीण गरीबी वर्ष 1979–74 में 56.44 प्रतिशत थी, जो घटकर वर्ष 1993–94 में 37.27 प्रतिशत रह गयी। वर्ष 1999–2000 में इसमें और गिरावट आई और यह 27.09 प्रतिशत रह गयी। लेकिन यह चिन्ता का विषय है कि अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 19.3 करोड़ आबादी गरीब है जिसकी वजह से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की समीक्षा और पुनर्गठन किया गया। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना और अन्य कार्यक्रमों का पुनर्गठन इसी समीक्षा का नतीजा है। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोज़गार योजना 1 अप्रैल 1999 को शुरू की गयी। यह योजना कार्यक्रम क्रियान्वयन की दृष्टि से पहले ही योजनाओं से भिन्न है।

इसके अतिरिक्त 25 सितम्बर 2001 को सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना शुरू की गयी। इसके तहत कुल वार्षिक खर्च 10000 करोड़ रूपये रखा गया। इस योजना के तहत हर वर्ष प्रत्येक राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश को 5700 करोड़ रूपये मूल्य का 50 लाख टन अनाज मुफ्त उपलब्ध कराया जाना है। करीब 5000 करोड़ रूपये की राशि मजदूरी और परिसम्पत्तियों के लिये खर्च की जायेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक वर्ष

लगभग 100 करोड़ श्रम दिवसों के बराबर रोज़गार के अवसर उपलब्ध होने की उम्मीद है। इसमें लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये इस कार्यक्रम को पंचायती राज संस्थाओं के जरिये चलाया जायेगा।

NOTES

सरकार अपनी रणनीति के तहत विभिन्न राज्यों व संघ शासित प्रदेशों में चल रहे सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन व निगरानी पर विशेष जोर देती है। इन समितियों में सांसद, विधायक, पंचायती राज संस्थाओं और गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि शामिल हैं।

भारत में प्रमुख कृषक आन्दोलन– एक आलोचनात्मक विश्लेषण :

भारतीय कृषक संरचना के अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र में विभिन्न श्रेणियों के बीच में भूमि के स्वामित्व, नियंत्रण, आय और जीवन के तौर–तरीके सम्बन्धी अनेक अन्तर पाये जाते हैं। कृषक क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक असमानताओं और इनके सम्बन्धों में जागरूकता के बढ़ने के कारण वर्तमान समय में कृषक असन्तोष बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे किसानों, काश्तकारों, पट्टेदारी में खेती करने वालों और भूमिहीन श्रमिकों के जीवन में अनेक अभाव पाये जाते हैं। उनके अस्तित्व की दशायें सोचनीय हैं और वे जीवन के साधारण सुख–सुविधाओं से भी अधिकांशतः वंचित हैं। कहीं कोई भूमिहीन जबरन भूमि पर कब्जा करने का प्रयत्न करता है तो कहीं कोई भू–स्वामी अपने काश्तकार को भूमि पर से बेदखल करने में लगा हुआ है। कहीं भूस्वामी काश्तकारों और भूमिहीन श्रमिकों का शोषण करते हुए नजर आते हैं। कहीं–कहीं भूमि को लेकर मारपीट, गोली मार देने और शोषण करते हुए नज़र आते हैं। यहाँ तक कि जिन्दा जला देने की घटनायें भी सुनने में आती है। ऐसी स्थिति में प्रायः कृषक समुदायों में असन्तोष पाया जाता है। इन लोगों में अपने अस्तित्व की दशाओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में राजनीतिक आन्दोलनों की विशेष भूमिका रही है।

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ कृषक असन्तोष विशेष रूप में पाया जाता है, जबकि अन्य क्षेत्र इससे मुक्त हैं। पूर्व और दक्षिण भारत के चावल उत्पादक क्षेत्रों में, विशेषतः आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में कावेरी के डेल्टा, पश्चिम बंगाल तथा केरल के काफी क्षेत्रों में कृषक असन्तोष व्याप्त है। ये प्रमुखतः वे क्षेत्र हैं जहाँ भूमि पर जनसंख्या का काफी दबाव पाया जाता है। विशेषतः इन क्षेत्रों में और देश के अन्य भागों में भी सामान्यतः कृषि जनसंख्या में भूमिहीन और उन लोगों का अनुपात काफी ऊँचा है जिसके पास बहुत ही थोड़ी मात्रा में भूमि है। इन सब कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में संघर्ष और हिंसा में वृद्धि हुई है। यद्यपि हरित क्रान्ति से ग्रामों की काया पलट तो हुई है, परन्तु इसका लाभ अधिकांशतः कुछ थोड़े से धनी किसानों को हुआ है। छोटे किसानों,

काश्तकारों तथा भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। छोटे किसानों, काश्तकारों तथा भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है और विशेषतः बढ़ते हुए मूल्यों का इनकी भौतिक दशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

NOTES

भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या में बराबर वृद्धि होती जा रही है। जहाँ सन 1921 में कृषि श्रमिकों की संख्या में बराबर वृद्धि होती जा रही है। जहाँ सन 1921 में कृषि श्रमिकों की संख्या 2.10 करोड़ थी। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल श्रमिक 30.60 करोड़ थे, इनमें से 24.17 करोड़ ग्रामीण तथा 6.43 करोड़ नगरीय क्षेत्र में थे। 66.7 प्रतिशत श्रमिक कृषि एवं अन्य सहायक क्रियाओं में लगे हुए थे। इनमें से 38.4 प्रतिशत खेतिहर मजदूर, 26.4 प्रतिशत पशुधन, धन मछली पालन, शिकार, बगान आदि में तथा शेष अन्य कार्यों में लगे हुए थे। इससे स्पष्ट है कि 4/5 भाग श्रमिकों का ग्रामों में निवास करता है। जिन्हें पूरे वर्ष भर रोजगार प्राप्त नहीं होता है। फलस्वरूप श्रमिक असन्तोष उत्पन्न होता है।

कृषक आन्दोलन का अर्थ एवं परिभाषा :

किसी भी प्रकार का तनाव आन्दोलनों को जन्म देता है। तनाव और आन्दोलनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः कई विद्वानों ने कृषक तनाव को कृषक आन्दोलन के रूप में परिभाषित किया है। कृषक आन्दोलन ऐसे आन्दोलनों की ओर लक्ष्य करते हैं। जिनका मूलाधार कृषि की आवश्यकताओं से सम्बन्धित होता है, जो मूलतः अपने सत्तापरक स्वामियों से मुक्त होने के लिये किये जाते हैं।

आर0बी0 पाण्डेय– "कोई भी आन्दोलन कृषक आन्दोलन हो सकता है, बशर्ते उसका मूल उद्देश्य कृषकों के अधिकार की लड़ाई हो, चाहे वह कृषकों द्वारा गठित हो अथवा, अन्य समूहों द्वारा।"

प्रो0 आर0 सिंह– "हिंसा अथवा हिंसा का भय दिखाकर जब खेतिहर मजदूर भू–स्वामियों अथवा सम्बन्धित सरकार को झुकाने का प्रयास करता है तो कृषक आन्दोलन जन्म लेता है।"

इस प्रकार कृषक आन्दोलन, कृषि मजदूरों से सम्बन्धित आन्दोलन है जो उनके शोषक, पतन तथा आर्थिक परतंत्रता के विरोध में उत्पन्न होते हैं। किसानों और उनसे सम्बन्धित अन्य समूह भी इसमें सहभागी हो सकते हैं। कई बार कृषि से सम्बन्धित व्यवसायियों, भूस्वामियों तथा विचौलियों ने भी अपने लाभ के लिये कृषक आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई है।

NOTES

सन 1935 ई में प्रथम अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का लखनऊ में सम्मेलन हुआ जिसमें यह निश्चय किया गया कि किसान कांग्रेस की देश के सर्वोच्च किसान संगठन के रूप में स्थापना की जानी चाहिये।

किसान–संघर्षों में सर्वाधिक हिंसात्मक संघर्ष, तेलांगना त्रिपुरा तथा मणिपुर में हुए।

वैश्वीकरण और इसका भारतीय कृषि पर प्रभाव :

वैश्वीकरण का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव के रूप में देखना है। ग्लोबल विपेज की अवधारणा कोई बहुत नई अवधारणा नहीं है। पहले भी शक्तिशाली देश अपने राज्यों, साम्राज्यों और आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के लिये नये–नये तरीके उपयोग करते थे। मौजूदा वैश्वीकरण एव लम्बी, ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत भारतीय गाँवों में उन वैश्वीय उत्पादों को स्थानीय उत्पादों में बदलते देखा जा सकता है। जो अभी तक उनकी पहुँच से बहुत दूर होते थे। ग्रामीण समाज में भी फैलता उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण का सबसे मजबूत उदाहरण है। अतः वैश्वीकरण गिडेंस के अनुसार– "आज सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध ऐसे हैं जो राष्ट्रीय सीमाओं और भाग्य को निर्धारित करते हैं। दुनिया की इस बढ़ती हुई आत्मनिर्भरता को ही विश्व व्यापारीकरण या वैश्वीकरण कहते हैं।

भारत में वैश्वीकरण का प्रारम्भ सन 1991 से माना जाता है। यह एक नये आर्थिक युग का सूत्रपात था। इस अर्थव्यवस्था की विशेषता यह है कि यह संघीय बाजार में कार्य करती है। इसमें राज्यों को यह अधिकार मिल गया है कि वे केन्द्रीय

NOTES

योजना अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अपनी वित्तीय स्थिति में परिवर्तन कर सके। इस व्यवस्था से सुधार आता है या नहीं। इसके लिये राज्य ही उत्तरदायी है। इस प्रकार, यह नई व्यवस्था से सुधार नियन्त्रण अर्थव्यवस्था से संघीय अर्थव्यवस्था में बदल गई है।

भारत जैसे अनेक विकासशील देशों में बढती जनसंख्या में लोग अपनी आजीविका और रोज़गार पर वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के प्रतिकूल असर को अनुभव कर रहे हैं। किसानों पर अब विश्व बाज़ार के उतार–चढाव का अधिक असर पड़ने लगा है तथा वैश्वीकरण की आँधी भारतीय समाज व संस्कृति को गहराई तक प्रभावित कर रही है। आज भारतीय बाज़ार तरह–तरह के परिधानों, खाद्यान्नों एवं उत्पादों से भरे पड़े हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग 4600 विदेशी कम्पनियाँ हैं जो चाकलेट, कोका–कोला, फास्ट फूड, शैम्पू, टूथपेस्ट, क्रीम पाउडर से लेकर बड़ी छोटी इलेक्ट्रानिक वस्तुयें बनाती हैं। अब तो ये कम्पनियाँ रक्षा बंधन पर्व पर राखियाँ भी बनाने लगी हैं। इतना ही नहीं अब तो ये कम्पनियां भारतीय वनस्पति पेड़ पौधे, बीज आदि के पेटेन्ट हासिल कर उनकी बिक्री पर अपना एकाधिकार जमा रही हैं। अब तो इन्हें लोकप्रिय भारतीय पेय 'नारियल पानी' को बोतल बंद करके बेंचने की अनुमति भी मिल गयी है। इस प्रकार इन्होंने भारतीय हस्तशिल्प उद्योग को भी नहीं बक्शा है। फलस्वरूप परम्परागत रूप से हस्तशिल्प कार्यों में लगे कारीगर बेरोजगार हो गये हैं। वैश्वीकरण इन लोगों के लिये अभिशाप बन गया है। भारत की दयनीय स्थिति का अन्दाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी मात्र 0.5 प्रतिशत है। नगरीय व्यवस्था हो या ग्रामीण सभी तब नये उत्पाद पहुँच रहे हैं। इस प्रकार भूमण्डलीकरण ने भारतीय समाज व कृषि व्यवस्था को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है।

जल तथा कृषि सिंचाई प्रबन्ध :

जल मानव जीवन के लिये महत्वपूर्ण घटक है। भारत के कृषि प्रधान देश होने के कारण देश के समग्र विकास के लिये जल अनिवार्य है। इसलिये जल संसाधनों का

अधिकतम विकास और प्रभावकारी उपयोग अन्यत्र आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है। जल संसाधन मंत्रालय देश के जल संसाधन के विकास और नियमन के लिये नीतियाँ तथा कार्यक्रम निर्धारित करता है। मंत्रालय के दायित्वों में क्षेत्रीय योजनायें आना, उनमें समन्वय स्थापित करना, नीतियाँ–निर्देश जारी करना, विश्व का भारत बड़ा कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 80 प्रतिशत कृषि वर्षा के जल के सहारे होती है। भारत में जल आपूर्ति और प्रबन्धन आजादी के बाद सरकार के हाथों में रहा है। इससे गाँवों में जो जल संचय के सार्वजनिक प्रयास और तरीके थे, धीरे–धीरे खत्म होते गये। पानी का निजीकरण कर देने के बाद जल संचय, संरक्षण और प्रबन्धन के सार्वजनिक प्रयासों में और भी कमी आई। इससे पारस्परिक जल स्रोतों की हालत और भी खराब हो गई। हर साल देश की अधिकांश जलसंख्या को पानी की किल्लत से दो चार होना पड़ता है।

NOTES

आजाद भारत में जल ही एक ऐसी आधारभूत आवश्यक वस्तु है। जिस पर सार्वजनिक क्षेत्र की सबसे अधिक पूंजी लगाई गयी है। 4500 से अधिक बड़ी और छोटी परियोजनाएँ प्रारम्भ की गयी। इनमें से अभी एक तिहाई परियोजनाएँ अधूरी पड़ी हैं और पूर्ण होने की बाट जोह रहीं हैं। जिसकी वजह से पारम्परिक स्रोतों को दोहन तेजी से बढ़ा और देश के हजारों की संख्या में जल स्रोत सूख गये जिससे पीने और कृषि के लिये पानी का जबरदस्त संकट हो गया है। विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत की स्थिति जलसम्पदा के मामले में बेहतर है।

सितम्बर 1998 में प्रकाशित विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में जल प्रबंधन के संदर्भ में तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में जल की माँग लगातार बढ रही है। जबकि संसाधन कम जो रहे हैं। मार्च 2000 में पानी से सम्बन्धित अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन में पानी से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पानी का राजनैतिक एजेन्डों में शामिल करने की बात कही गयी थी। सम्मेलन के अंत में जारी हेग घोषणा में कहा गया था कि इक्कीसवी सदी में जल के संदर्भ में सबको सुरक्षा प्रदान करना हमारा उद्देश्य है।'

NOTES

पुराने जल संसाधनों का रख–रखाव वर्षा ऋतु के आवागमन से पूर्व ग्रीष्म ऋतु में परम्परागत जल कुण्ड, सरोवर, कुंओं और तालाबों की सफाई एवं अकाल राहत कार्यों के तहत उनको गहरा कराने के साथ ही उनकी मरम्मत का कार्य, ग्रामीण जल क्षमता के संवर्धन का श्रेष्ठतम् उपाय हो सकता है।

रूफ वाटर हार्वेस्टिंग :

रूफ वाटर हार्वेस्टिंग एक उपयोगी जल संरक्षण का उपाय है। इससे भूगभीय जल की मात्रा में वृद्धि कर उसे सिंचाई और पेयजल के उपयोग में लिया जाता है। रूफ वाटर हार्वेस्टिंग के तहत गाँव का पानी गाँव में और खेत का पानी खेत में रोककर गाँवों को जल समृद्ध बनाया जा सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन :

आधुनिक काल में प्रबन्धन की अवधारणा काफी महत्वपूर्ण हो गई है। आधुनिक तकनीक, ज्ञान और वैज्ञानिक प्रणाली के व्यवस्थित तथा सन्तुलित प्रयोग के लिये प्रबन्धन आवश्यक होता है। इसलिये सिंचाई प्रबन्धन कृषि क्षेत्र की क्षमता का भरपूर उपयोग के लिये जरूरी है। भारत सरकार ने सिंचाई प्रबन्धन को जल संसाधन मंत्रालय के अन्तर्गत रखा है जो जल संसाधनों के विकास तथा नियमन के लिये नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित करता है। वर्ष 2000 तक बड़ी और मझोली सिंचाई योजनाओं से 353.3 लाख हेक्टेयर तथा लघु सिंचाई योजनाओं से 593.8 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का विकास होने से कुल 947.3 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का विकास किया जा चुका था। जबकि योजना अवधि से पूर्व बड़ी और मझोली सिंचाई योजनाओं से 97 लाख हेक्टेयर तथा लघु सिंचाई योजना से 129 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का ही विकास हो पाया था। यह सिंचाई क्षमता कुल 226 लाख हेक्टेयर पर थी, जो वर्ष 2000 तक की स्थिति में एक चौथाई से भी कम थी। इस प्रकार योजनाकाल में सिंचाई क्षमता का आशातीत विकास हुआ है।

लघु सिंचाई :

NOTES

भूमिगत एवं सतह जल सम्बन्धी वे साथी परियोजनायें जो लघु सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत आती है, जिनमें 2000 हेक्टेयर तक कृषि योग्य कमान क्षेत्र का विकास किया जाता है। भूमिगत जल का विकास किसानों द्वारा व्यक्तिगत और सहकारिता प्रयासों के माध्यम से किया जाता है। इसलिये किसानों को निजी बचत और संस्थागत वित्तीय सहायता से धन जुटाया जाता है। सतह जल सम्बन्धी लघु सिंचाई योजनाओं के लिये आमतौर पर सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय से धन का प्रबन्धन किया जाता है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1986–87 को आधार मानकर लघु सिंचाई परियोजनाओं की गणना का काम राजस्थान को छोड़कर सभी राज्यों में कराया गया जिसकी रिपोर्ट नवम्बर 1993 में प्रकाशित की गयी। लघु सिंचाई परियोजनाओं को दूसरी गणना वर्ष 1993–94 को आधार मानकर की गयी और उसकी रिपोर्ट मार्च 2001 मों प्रकाशित हुई। दूसरी गणना रिपोर्ट में निहित आँकडों को इन्टरनेट पर उपलब्ध कराया गया है जो कापैक्ट डिस्क (सीडी) पर भी उपलब्ध है।

वर्तमान में लघु सिंचाई परियोजनाओं की तीसरी गणना का काम जारी है जो वर्ष 2000–01 को आधार मानकर किया जा रहा है। केन्द्रशाषित प्रदेश दमन और दीव तथा लक्ष्यद्वीप को छोड़कर सभी राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में यह गणना की जा रही है। वर्ष 1999–2000 से यह सहायता उड़ीसा के केबी के जिलों को भी दी जा रही है। मार्च 2004 तक पूरी की जा चुकी है। मार्च 2004 तक पूरी की जा चुकी 2172 से 70860 हेक्टेयर क्षमता का सृजन हुआ है।

मझोली तथा बड़ी सिंचाई परियोजनायें :

देश भर में व्यापक सिंचाई सुविधाओं का निर्माण करने के लिये पंचवर्षीय योजनाओं में लगातार प्रयास किये गये हैं। बड़ी मझोली और लघु सिंचाई परियोजनाओं तथा कमान क्षेत्र के व्यवस्थित विकास के जरिये सिंचाई सहायता उपलब्ध कराई जाती है। सिंचाई के सतत और व्यवस्थित विकास की बदौलत आठवीं पंचवर्षीय योजना के

अंत तक सिंचाई क्षमता बढकर करीब 895.6 लाख हेक्टेयर तक पहुँच गयी थी जो 1951 में पहली पंचवर्षीय योजना शुरू होने के समय 266 लाख हेक्टेयर थी।

NOTES

नौवीं पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षों में 51.7 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त सिंचाई क्षमता पैदा की गयी और इसमें से करीब 39.4 लाख हेक्टेयर क्षमता उपयोग में लाई गयी। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान बड़ी मझोली और लघु सिंचाई परियोजनाओं के अन्तर्गत विकसित जिन सिंचाई परियोजनाओं में दो हजार से 10 हजार हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराई जा सकती है वे मझोली सिंचाई परियोजनायें कहलाती हैं। इसी तरह जिन परियोजनाओं में 15 हजार हेक्टेयर से अधिक कृषि योग्य कमान क्षेत्र में सिंचाई होती है, उन्हें बड़ी सिंचाई परियोजनायें कहते हैं। उन्हें बड़ी सिचाई परियोजनायें कहते हैं। विभिन्न योजनाबधियों में बड़ी और मझोली परियोजनाओं पर किये गये खर्च और हासिल की गयी सिंचाई क्षमता का ब्यौरा दशवी पंचवर्षीय योजना के शुरू में 159 बड़ी परियोजनाओं के लिये 58344 करोड़ रूपये, 242 मझोली परियोजनाओं के लिये 4465 करोड़ रूपये और 89 विस्तार, नवीकरण और आधुनिकीकरण परियोजनाओं के लिये 8253 करोड़ रूपये निर्धारित किये गये।

■■■